डेरी समाचार

भाकृअनुप – राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, करनाल की त्रैमासिक विस्तार पत्रिका

वर्ष 46 | अक्टूबर – दिसम्बर 2016 | अंक – 4

पशु पोषण विशेषांक

दुधारू पशुओं के आहार में सूक्ष्म खनिज तत्वों का महत्व

दीपिका त्रिपाठी, रवि प्रकाश पाल एवं वीना मणि

दुधारू पशु के प्रजनन और दूध उत्पादन के लिए ऊर्जा और प्रोटीन के अतिरिक्त खनिज तत्वों का विशेष महत्व है। कैल्शियम, फास्फोरस, मैग्निशियम, सोडियम, क्लोराइड मुख्य खनिज तत्व है। कोबाल्ट, आयरन, मैगनीज, आयोडीन, सेलेनियम, जिंक, कॉपर, क्रोमियम, सूक्ष्म खनिज है अर्थात इनकी आवश्यकता बहुत कम केवल मिलीग्राम प्रति किलो खनिज मिश्रण ही होती है। पशुपालक दुधारू पशु के लिए ऊर्जा, प्रोटीन और मुख्य खनिज तत्वों पर तो विशेष ध्यान देते हैं, क्योंकि इनका महत्व और इनकी मात्रा के बारे में पशुपालक कुछ हद तक जानकारी रखते है परन्तु सूक्ष्म खनिजों के महत्व के प्रति जागरूक नहीं है और यह जानना नितान्त आवश्यक है कि इन सूक्ष्म तत्वों की भी अन्य मुख्य खनिज तत्वों के उपयोग में अहम भूमिका है।

व्यवसायिक खेती के कारण मृदा में इन सूक्ष्म तत्वों की कमी पाई गयी है। इसके कारण पशु चारे में इनकी मात्रा काफी कम है। खाद्य में उपस्थित इन खनिजों का शरीर में अवशोषण काफी कम होता है। सूक्ष्म तत्वों की आपूर्ति के लिए चारे पर निर्भर न होकर अतिरिक्त खनिज मिश्रण देना अनिवार्य है।

सूक्ष्म तत्वों को देते समय इनकी पर्याप्त मात्रा का ज्ञान होना आवश्यक है। क्योंकि कई तत्व इनमें से एक दूसरे के विरूद्ध होते हैं। जैसे कि एक तत्व की मात्रा कम या अधिक होने से दूसरे सूक्ष्म तत्वों के अवशोषण में बाधा आती है। इन सम्भावनाओं को देखते हुए इस लेख में इन तत्वों की पर्याप्त मात्रा दुग्ध उत्पादन, चारा (1 किग्रा. शुष्क पदार्थ) गर्भावस्था, शरीर वजन आदि के मापदण्डों में दिया है।

कोबाल्ट: यह तत्व विटामिन बी के निर्माण में अनिवार्य है। गाय भैंस में विटामिन बी आहार में देना उपयोगी नहीं है। क्योंकि यह इनके शरीर में ही कोबाल्ट द्वारा बनता है। यहाँ यह जानना जरूरी है कि दुधारू पशु में पेट के चार हिस्से होते हैं। रूमेन, रेटयुकुलम, ओमेजम तथा आबोमेजम्, इनमें रूमेन सबसे बड़ा हिस्सा होता है। रूमेन में लाखों की संख्या में कई प्रकार के जीवाणु होते हैं, जो पशु के लिए आवश्यक पोषक तत्व तैयार करते हैं। विटामिन बी$_{12}$ इन्हीं जीवाणुओं की मदद से तैयार होता है। विटामिन बी$_{12}$ आवश्यक मात्रा में शरीर में नहीं बनेगा जिससे खून में ग्लुकोज की कमी आ जाएगी। ऐसे समय शरीर की ऊर्जा की कमी दूर करने के लिए पशु शरीर की वसा का इस्तेमाल करेगा। इससे खून में फ्री फैटी एसिड बढ़ जायेंगे। धीरे-धीरे ये लीवर में जमा होकर लीवर कार्यक्षमता को कम कर देते हैं। ऐसी परिस्थितियों में पशु में कीटोसीस की आशंका बढ़ जाती है। पशु चारा खाना कम कर देता है और कमजोर हो जाता है। खाद्य में कोबाल्ट की कमी से पशु में कमजोरी आना, पशु का विकास धीमी गति से होना, ऐनिमिया, प्रसूति के बाद गर्भाशय पूर्वावस्था में देर से आना जिससे अगला बच्चा देर से होना, अनियमित मदचक्र, बार-बार कृत्रिम गर्भाधान करना, दुग्ध उत्पादन में कमी आना आदि समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैं।

दुधारू पशु के लिए कोबाल्ट का महत्व ब्याने के 21 दिन पहले और 21 दिन ब्याने के बाद अधिक होता है। इन दिनों पशु खाना कम कर देता है और ग्लूकोज की खपत भ्रूण बढ़ने के साथ-साथ दुग्ध उत्पादन में अधिक होती है। ऐसी नाजुक स्थिति में कोबाल्ट की कमी से आवश्यक मात्रा में बी$_{12}$ नहीं बनेगा जिससे खून में ग्लूकोज की कमी आ सकती है। ब्याने के बाद पशु बीमार होना या दुग्ध उत्पादन में कमी होना आदि समस्याओं से

सम्पादकीय

दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में भारत एक अग्रगण्य देश के रूप में उभर रहा है। इस वित्तवर्ष में भारत का दुग्ध उत्पादन 143 मिलियन टन है जो कि विश्व के कुल दुग्ध उत्पादन का 16 प्रतिशत है। श्वेत क्रांति के इस आयक प्रयासों में,सुनियोजित योजना विविध डेरी विकास कार्यक्रमों, कृषकों, सक्रिय सहकारिताओं की विशेष भूमिका रही है। दुग्ध एवं दुग्ध उत्पादन भारतीय खाद्य व्यवस्था के महत्व पूर्ण अंग है और इसकी माँग दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। डेरी व्यवसाय भी करोड़ों सीमान्त और छोटे किसानों के आजीविका निर्वाह का महत्व पूर्ण स्त्रोत बन गया है। पशुपालन व्यवसाय मुख्यत: हरे चारे पर निर्भर करता है क्योंकि हरा-चारा ही पशुओं के लिए पोषक तत्वों का एक मात्र सस्ता एवं सूक्ष्म स्त्रोत है। अत: पशुपालन व्यवसाय की सफलता के लिए पशुओं को वर्षभर हरे चारे की उपलब्धता करना आवश्यक है। वर्तमान में हमारे देश में 63 प्रतिशत हरा-चारा एवं 24 प्रतिशत सूखे-चारे की कमी है। यह माँग, आगामी वर्षो में और ज्यादा बढ़ेगी। बढ़ती हुई चारे की मांग की आपूर्ति को केवल प्रति ईकाई उत्पादन बढ़ाकर ही पूरा किया जा सकता है। प्रस्तुत डेरी समाचार अंक में पशुपोषण के आवश्यक सूक्ष्म तत्व, पशुओं के लिए पानी का महत्व अजोला व शुगरग्रेज चारे हेतु नवीन विकल्प तथा बहुवर्षीय चारे के बारे में आलोख प्रस्तुत किये गये हैं आशा है किसान भाइयों को यह अंक लाभकारी सिद्ध होगा।

पशुपालक गुजर सकता है। इन सभी समस्याओं से बचने के लिए खाद्य में कोबाल्ट की मात्रा 0.25-0.35 मिली ग्राम प्रति कि.ग्रा. शुष्क पदार्थ होनी चाहिए।

सेलेनियम : पशु प्रजनन प्रक्रिया के दौरान और प्रजनन के बाद उत्पन्न होने वाले विकारों से पशु स्वास्थ्य और दुग्ध उत्पादन में गिरावट आती है जिससे पशुपालक का काफी नुकसान होता है। प्रजनन विकारों से पशु की रक्षा करने के साथ-साथ पशु और नवजात बच्चों की रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ाने के उद्देश्य से सेलेनियम का बाकी सूक्ष्म तत्वों से अधिक महत्व है। प्रजनन के बाद जेर अटकना, गर्भाशय खराब होना, अण्डाशय में रसौली, ज्यादा दूध देने वाले पशु में सामान्य रोग जिससे अनियमित मदचक्र, गर्भाधारण न होना, अयन में द्रव जमा होना, थनैला रोग, प्रतिकारक शक्ति कम होना, गर्भाधारण देर से होना, दुग्ध उत्पादन में गिरावट आना आदि समस्यायें उत्पन्न हो सकती हैं। खाद्य में सेलेनियम की पर्याप्त मात्रा होने से इन सभी समस्याओं से पशु को बचाया जा सकता है।

एक किलो दूध में 0.01-0.025 मि.ग्रा. सेलेनियम स्रावित होता है। 0.3 मि.ग्रा. प्रति कि.ग्रा. शुष्क पदार्थ सेलेनियम सभी दुधारू पशु के लिए पर्याप्त होता है। गर्भावस्था के दौरान 1.4 मि.ग्रा. प्रतिदिन और गर्भावस्था के अन्तिम 21 दिनों में 1.7 मि.ग्रा. प्रति सेलेनियम पर्याप्त है। दुग्ध उत्पादन के दौरान 10 किलो दूध देने वाले पशु के लिए 2.5 मि.ग्रा. और 20 किलो दूध देने वाले 3.0 मि.ग्रा. प्रतिदिन सेलेनियम पर्याप्त है। 6 मि. ग्रा. सेलेनियम प्रतिदिन ज्यादा दूध देने वाले पशु को थनैला रोग से बचाता है। चारे में कैल्शियम की मात्रा कम से कम 0.5 प्रतिशत और ज्यादा से ज्यादा 1.3 प्रतिशत होने से सेलेनियम का अवशोषण कम होता है। खाद्य में सल्फर की मात्रा अतिरिक्त होने से सेलेनियम के अवशोषण में बाधा आती है।

आयोडीन : कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा के चयापचन के लिए थायरोक्सीन हार्मोन्स की आवश्यकता होती है। शरीर में ग्लूकोज अतिरिक्त होने पर ग्लुकोज को संचित करना और ग्लुकोज की कमी होने पर संचित ग्लुकोज उपलब्ध कराना आदि के लिए थायरोक्सीन की आवश्यकता होती है। ग्लुकोज के अलावा प्रोटीन उपलब्धता बढ़ाने के लिए भी थायरोक्सीन की आवश्यकता होती है। दुग्ध उत्पादन के उद्देश्य से थायरोक्सिन हार्मोन बहुत ज्यादा महत्वपूर्ण है। थायराक्सिन हार्मोन बनाने के लिए आयोडीन आवश्यक है। गर्भावस्था के आखिरी दिनों में दुग्ध उत्पादन और ठंड के समय थायरोक्सिन का उत्पादन बढ़ जाता है। पशु आहार में आयोडीन की मात्रा 0.6 मि.ग्रा. प्रति 100 किलो शरीर भार पर्याप्त है। एक किलो दूध में 30-300 मि.ग्रा. आयोडीन स्रावित होता है। ज्यादा दूध देने वाले पशु में थायरोक्सिन का उत्पादन 2-3 गुना बढ़ जाता है। इसलिए इनके आहार में आयोडीन की मात्रा 1.5 मि.ग्रा. प्रति 100 किलो शरीर भार होना चाहिए। चारे में पत्तागोभी, सरसों, शकरकंद, सोयाबीन, चुकन्दर, शलजम आदि होने से आयोडीन के अवशोषण में बाधा आती है। इस परिस्थिति में आयोडीन की मात्रा अधिक होनी चाहिए। चारे में आयोडीन 0.5 मि.ग्रा. प्रति किलो शुष्क पदार्थ से अधिक नहीं होना चाहिए।

जिंक: पशु शरीर में कोशिकाओं की वृद्धि, हार्मोन्स के निर्माण, उपापचयन, भूख नियंत्रण, रोग प्रतिकारक शक्ति आदि नियंत्रित करने वाले एन्जाइम के लिए जिंक की आवश्यकता होती है। खुर और स्तन का बाहरी सुरक्षा आवरण (कॉइटिन) बनाने में जिंक की आवश्यकता होती है। खुर और अयन स्वास्थ्य के साथ-साथ शरीर में तैयार होने वाले हानिकारक ऑक्सीकारक तत्वों को क्रियाविहीन करने के लिए जिंक पर निर्भर एन्जाइम की आवश्यकता होती है। चारे में जिंक की पर्याप्त मात्रा खून और कालोस्ट्रम में इम्युनोग्लोबिन्स बढ़ाता है जो पशु स्वास्थ्य और नवजात बछड़ों के लिए अधिक लाभदायक है। जिंक की कमी से भूख में कमी, पशु का विकास रूक जाना, वृषण का विकास न होना, सींग और खुर कमजोर होना, अण्डाशय का विकास न होना, अनियमित मदचक्र, गर्भाधारण देरी से होना आदि समस्याऐं उत्पन्न हो सकती हैं। 500 किलो के पशु के लिए गर्भावस्था के दौरान आहार में जिंक की मात्रा 410 मि.ग्रा. प्रतिदिन और 20 किलो दूध देने वाले पशु के लिए 670 मि.ग्रा. प्रतिदन पर्याप्त है। बीमारी और तनाव इन परिस्थितियों में शरीर में ज़िंक की जरूरत बढ़ जाती है। जिंक और कॉपर एक दूसरे के विरूद्ध है। खाद्य में जिंक की मात्रा अधिक होने से कॉपर के अवशोषण में बाधा आती है।

कॉपर : शरीर में तैयार होने वाले कई अत्यावश्यक एन्जाईम और लोहे के अवशोषण के लिए कॉपर की आवश्यकता होती है। शरीर में तैयार होने

वाले ऑक्सीकारक तत्वों जो शरीर की कोशिकाओं के लिए हानिकारक होते हैं और इनको नष्ट करने के लिए कॉपर की आवश्यकता होती है। कॉपर की कमी से पशु का विकास धीमी गति से होता है। हड्डियां कमजोर होना, प्रजनन क्षमता कम होना, रोगप्रतिकारक क्षमता कम होना, यौवनारम्भ देर से होना, बार-बार गर्भधारण ना करना, भ्रूण मर जाना, जेर अटकना आदि समस्याएं आ सकती है। 500 किलो शरीर भार वाले पशु के लिए गर्भावस्था के 100 दिन तक 102 मि.ग्रा. कॉपर प्रतिदिन, 100-225 दिनों तक 127 मि.ग्रा. प्रतिदिन और 225 से ब्याने तक 140 मि.ग्रा. प्रतिदिन कॉपर पर्याप्त है। दुग्ध उत्पादन के दौरान 10 किलो दूध देने वाले पशु के लिए 130 मि.ग्रा. और 20 किलो दूध देने वाले पशु के लिए 170 मि.ग्रा. कॉपर प्रतिदिन पर्याप्त है। खाद्य में सल्फर और मॉलीब्डिनम की अधिक मात्रा होने से कॉपर अवशोषण में बाधा आती है। इसलिए कॉपर और मॉलीब्डिनम 3:1 के अनुपात में होना चाहिए।

मैंगनीज : अन्य विरल तत्वों की तरह मैंगनीज शरीर में तैयार होने वाले हानिकारक ऑक्सीकारक पदार्थों को अकार्यक्षम करने में काम आता है। शरीर के ढ़ांचे में उपास्थी को मजबूत बनाने में मैंगनीज अत्यावश्यक है। खाद्य में मैंन्गनीज की कमी से पशु का ढांचा विकसित न होना, पशु का विकास धीमी गति से होना, पैरों में कमजोरी आना, सांधे (ज्वाइंट) बड़े होना, हड्डियों की ताकत कम होना, पशु कमजोर होना, पैर गुथना आदि समस्यायें उत्पन्न हो सकती है। इन सभी समस्याओं से पशु के प्रजनन पर विपरीत असर पड़ता है। जैसे कि पशु की प्रजनन क्षमता कम होना, गर्भाधारण न होना, पशु का गर्मी में रहना परन्तु गर्मी के लक्षण न दिखना आदि कठिनाइयों से पशुपालक गुजर सकता है। 500 किलो वजन के पशु के लिए गर्भावस्था के दौरान 175 मि.ग्रा. मैंगनीज प्रतिदिन पर्याप्त है। दूध उत्पादन के दौरान 10 लीटर दूध के लिए 175 मि.ग्रा. और 20 किलो दूध के लिए 215 मि.ग्रा. मैन्गनीज प्रतिदिन पर्याप्त है।

क्रोमियम : संक्रमण काल यानि ब्याने के पहले 21 दिन और 21 दिन बाद, यह समय दुधारू पशु के जीवन का सबसे नाजुक समय होता है। इन दिनों जरा सी अनदेखी पशुपालक का भारी आर्थिक नुकसान कर सकती है। इन दिनों पशु काफी तनाव में रहता है। इससे शरीर में कुछ हानिकारक तत्वों का स्राव बढ़ जाता है। पशु चारा खाना कम कर देता है। खून में ग्लूकोज पर्याप्त मात्रा में होने पर भी कोशिकाओं को उपलब्ध नहीं हो पाता है। शरीर की ऊर्जा की कमी दूर करने के लिए शरीर का वसा प्रयोग होता है। इससे पशु ब्याने के बाद पतला और कमजोर हो जाता है। पशु में किटोसीस उत्पन्न हो सकता है। पशु की रोगप्रतिकारक शक्ति का कम होना आदि समस्यायें उत्पन्न हो सकती है। अब तक हुए अनुसंधानों से यह अनुमान लगाया गया है कि तनाव के दिनों में खाद्य में क्रोमियम की पर्याप्त मात्रा होने से पशु का चारा खाना बढ़ जाता है। शरीर की कोशिकाओं में ग्लूकोज और प्रोटीन की उपलब्धता बढ़ जाती है। इससे ब्याने के बाद पशु और बच्चा दोनों सेहतमंद रहते हैं और दोनो की रोगप्रतिकारक शक्ति भी बढ़ जाती है। दूध उत्पादन में भारी बढ़ोतरी आती है। खाद्य में 10 मि.ग्रा. क्रोमियम प्रतिदिन पर्याप्त है।

सारांश : इस आलेख में विभिन्न विरल तत्वों के महत्व से तो अवगत कराया गया ही है तथा यह भी जागरूकता बढ़ाने का प्रयास किया गया है कि आहार में इनकी सूक्ष्म मात्रा की भी कितनी अहम भूमिका है अन्यथा एक तत्व की कमी भी पशु के उत्पादन व स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डालती है।

शुगरग्रेज-उत्तम चारे हेतु नवीन विकल्प

अर्चना भट्ट, दीपा जोशी एवं अर्पिता शर्मा

शुगरग्रेज एक उत्तम गुणवत्ता वाली चरी है, जो कि ज्वार, मीठी चरी और सूडान घास की एक संकर किस्म है। इसका उपयोग विशेषतर हरे चारे, साइलेज व भूसे हेतु किया जाता है। आधुनिक परिवेश में यह चारे का उत्तम विकल्प है। इसकी तेजी से उगने की क्षमता, मीठे रसीले तने एवं चौड़े गहरे हरे पत्तों के कारण ही इसे उत्कृष्ट चारे की श्रेणी में रखा गया है। शुगरग्रेज की खेती व्यापक रूप से विभिन्न परिस्थितियों में की जा सकती है। निहित सघन जड़ प्रणाली होने के कारण शुगरग्रेज को कम वर्षा वाले क्षेत्रों में भी आसानी से उगाया जा सकता है हालांकि अनुकुल नमी मिलने पर इसकी पैदावर कई गुना बढ़ जाती है। प्रचुर मात्रा में शुष्क तत्व एवं शर्करा होने के कारण दुधारू पशु इसे बड़े चाव से खाते है।

मुख्य विशेषताएं :

- शुष्क तत्वों की मात्रा (22-26 प्रतिशत)
- शर्करा की अधिक मात्रा (10-11 प्रतिशत)
- अधिक प्रोटीन की मात्रा (12-18 प्रतिशत)
- कैल्शियम की मात्रा जो कि दुधारू पशुओं के लिए बहुत ही उपयुक्त है।
- रोगों से लड़ने की प्रतिरोधक क्षमता
- अधिक पैदावार की क्षमता
- पाचनशीलता (56-64 प्रतिशत)

शुगरग्रेज का उपयोग

ऐसे क्षेत्र जहाँ मक्का और ज्वार आदि फसलों की अधिक उपज नहीं होती, वहाँ पर शुगरग्रेज को साइलेज बनाने के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। हरे चारे के रूप में इसका उपयोग बड़ा लाभदायक है और पशु इसे बड़े चाव से खाते हैं। इसे भूसे की तरह भी उपयोग में लाया जा सकता है।

शुगरग्रेज प्रबंधन

मृदा	मृदा का पी एच पर 5.5-7.0
सिंचाई	गर्मियों में 8 दिन के अंतराल पर सर्दियों में 12 दिन के अंतराल पर
बुवाई का समय	बसंत ऋतु - फरवरी से अप्रैल खरीफ - मई से अगस्त

	रबी – सितम्बर से नवम्बर
बीज़ दर	काली मिट्टी – 5 किग्रा प्रति एकड़
	हल्की मिट्टी – 6 किग्रा प्रति एकड़
उर्वरक	यूरिया – 60 किग्रा/एकड़
	डी.ए.पी. – 30 किग्रा/एकड़
	पोटाश –20 किग्रा /एकड़
कीट एवं रोग प्रबंधन	तना एवं शाखा भेदक कीट की गंभीर समस्या होती हैं। इसके उपचार हेतु बीज उपचार करें तथा पहली सिंचाई के साथ 8 किलो फोरेट 10 जी अथवा कार्टप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी/एकड़ की दर से उपयोग करें।
फसल की कटाई	बुवाई के 45–50 दिन बाद शुगरग्रेज की दो कटाई ली जा सकती हैं। साईलेज़ के लिए 75–90 दिन के बाद कटाई ली जानी चाहिए।
उपज	250–300 क्विंटल प्रति एकड़।
बीज की उपलब्धता	खाद एवं बीज अपने नजदीकी कृषि विज्ञान केन्द्र से संपर्क कर सकते हैं।

पशुधन हेतु पानी की आवश्यकता एवं उसके गुणवत्ता का महत्व

अर्जुन प्रसाद वर्मा, तुलिका कुमारी, मुकेश कुमार एवं प्रिय जयकर

पानी पशु के शरीर का एक मुख्य घटक (तत्व) हैं तथा इसका पशु के शरीर के भार में 50 से 80 प्रतिशत योगदान रहता है। पानी की मात्रा पशु के शरीर में मुख्यरूप से आयु एवं उसके स्वास्थ्य पर निर्भर करती है। एक पशु अपने शरीर का पूरा वसा एवं लगभग 50 प्रतिशत तक प्रोटीन खोने या कम होने के पश्चात भी जीवित रह सकता है, लेकिन पशु के शरीर का 10 प्रतिशत तक भी पानी कम होने पर उसकी मृत्यु हो जाती है। अत: पशुधन के व्यवसाय के लिए अच्छे पानी की आपूर्ति बहुत जरूरी है, जिसका पशुओं के शुष्क पदार्थ सेवन से सीधा सम्बन्ध है।

पशु के शरीर में पानी का कार्य :

पशुओं के शरीर में पानी का कार्य निम्नलिखित हैं:–

पानी पशु के शारीरिक गतिविधियों से उत्पन्न अपशिष्ट पदार्थों को समाप्त करने में मदद करता है। पशुओं के शारीरिक तापमान को नियमित करने में मदद करता है। पानी पशुओं के शरीर में रक्त के आसमेटिक दबाव को नियमित करने में सहायक है। पानी पशु के शरीर से स्राव का घटक होने के साथ–साथ गर्भाधान और शारीरिक विकास में सहायक है।

पशुओं में पानी की आवश्यकता मुख्य रूप से तीन प्रकार से पूरी होती हैं :–

1. खुला या मुक्त पानी जैसे तालाब, नहर, नाले, बरसात का पानी या कृत्रिम रूप से पशुओं को दिया गया पानी।
2. पशुओं के चारे में संग्रहित पानी
3. पशुओं के शरीर में उपापचय प्रक्रियाओं द्वारा उत्पादित

पानी की आवश्यकता पशुओं में निम्नलिखित कारकों पर निर्भर करता है:–

पशु का प्रकार एवं शारीरिक आकार, गर्भावस्था, लैक्टेशन, भोजन का प्रकार, शुष्क पदार्थ के सेवन का स्तर,शारीरिक गतिविधि या कार्य का स्तर, पानी की गुणवत्ता, वृद्धि दर आदि।

सारणी 1. पशुओं में विभिन्न तापमान पर कुल पानी की मात्रा की आवश्यकता

पशु की विभिन्न अवस्था	विभिन्न तापमान (°C) पर पानी की आवश्यकता (लीटर)					
	4.4°C	**10°C**	**14.4°C**	**21.1°C**	**26.6°C**	**32.2°C**
नवजात शिशु की अवस्था 2–6 माह	20.1	22	25	29.5	33.7	48.1
नवजात शिशु की अवस्था 7–11 माह	23.0	25.7	29.9	34.8	40.1	56.8
नवजात शिशु की अवस्था 12 माह	32.9	35.6	40.9	47.7	54.9	78.0
बछड़ी एवं सूखी गाय	22.7	24.6	28.0	32.9	-	-
दूध देने वाली गाय (लैक्टेटिंग)	43.1	47.7	54.9	64.0	67.8	61.3
सांड़	32.9	35.6	40.9	47.7	54.9	78.0

पानी की गुणवत्ता

पानी की गुणवत्ता का पशुओं के स्वास्थ्य पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। पानी में अधिक लवण व विषाक्त यौगिकों की मात्रा का पशुओं की वृद्धि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार के पानी के उपभोग का शुष्क पदार्थ के सेवन पर प्रभाव पड़ता है। पानी की गुणवत्ता लवण की मात्रा से सर्वाधिक प्रभावित होती हैं। पानी में लवणता की उपस्थिती उसमें घुलनशील साल्ट से मापी जाती है।

सारणी 2 : टी.एस.एस के आधार पर पानी में घुलनशील लवणयुक्त जल की उपयुक्तता (उपयोगिता)

टी.डी.एस. (mg/ली.)	रेटिंग
21000	इलेक्ट्रिक कनेक्टीविटी (ईसी) 1.5 से कम, सभी प्रकार के पशुओं के लिए सबसे उपयुक्त
1000-2999	इलेक्ट्रिक कन्डक्टीविटी (ईसी) 1.5 से 5 तक, सभी वर्ग के पशुओं के लिए संतोषजनक। जिन पशु को लवण की आदत नहीं होती उनमें दस्त के विकार उत्पन्न हो जाते हैं।
3000-4999	इलेक्ट्रिक कन्डक्टीविटी (ईसी) 5 से 8 तक, पशुओं के लिए सुरक्षित लेकिन पशु में कुछ विकार जैसे दस्त आदि हो जाते हैं। पशु की पानी पीने की क्षमता कम हो जाती हैं।
<100	गाय, भैंस, भेड़, सुअर तथा घोड़े के लिए उपयुक्त
100 से 300	100 मिग्रा/लीटर से अधिक नाइट्रेट की मात्रा पशुओं के लिए बहुत ही हानिकारक हैं।
300 से अधिक	इस तरह के नाइट्रेट युक्त पानी एवं चारे को पशु को खिलाने पर नाइट्रेट की विषाक्तता हो जाता है। 300 पी.पी.एम. नाइट्रेट युक्त पानी पशुओं को नहीं पिलाना चाहिए।

रोमन्थी पशुओं में अफारा एवं नाइट्रेट विषाक्तता रोकथाम व उपचार

स्वाती शिवानी, चन्द्र दत्त, आकाश मिश्रा, रितिका गुप्ता एवं दिगविजय सिंह

इस लेख में पशुओं में अफारा एवं नाइट्रेट विषाक्तता होने के कारणों, उनके रोकथाम एवं उपचार का वर्णन किया गया ताकि पशुपालक इससे अवगत हो कर अपने पशुओं को इन ब्याधियों से छुटकारा दिला सकें।

(क) अफारा

रेटीकुलम-रयूमन में सूक्ष्मजीवियों द्वारा भोजन की किण्वता से उत्पन्न गैसों के जमाव से रयूमन के अत्याधिक फैलाव होने से अफारा हो जाता है। रयूमन में सूक्ष्मजैविक पाचन से गैस बनना एक आम प्रक्रिया है जो कि लगातार होती रहती है। गैस का उत्पादन दर पशु द्वारा ग्रहण किए जाने वाले आहार, उसके प्रकार एवं संरचना पर निर्भर करते हैं। लेकिन यह भी कहना उचित है कि रयूमन में गैस बनना एवं अफारा होने का कोई गहन सम्बन्ध नहीं है। अपर्याप्त मात्रा में रयूमन से बर्हिगमन ही नहीं बल्कि रयूमन में गैसों का जमाव अफारे का मुख्य कारण है। रयूमन में उत्पन्न गैस आमतौर पर तीन रास्तों से बहिर्गमन करती है। सबसे ज्यादा हिस्सा डकार से जाता है जोकि साधारणतया हरेक मिनट में 1-3 होता है। कुछ गैस जठरांत्र पथ के माध्यम से शरीर में विसत हो जाती है और बाकि मलाशय के द्वारा बाहर जाती है। गैसों के जमाव से रयूमन की बाई कोख (दिशा) का सुप्रकट फुलाव अफारे का अहम प्रतीक है। झागदार की अवस्था में बाई कोख में थप्पड़ मारने से धीमी आवाज आती है जबकि अनुपूरक अफारे में ढ़ोल जैसे पशु बेचैन हो जाता है और जल्दी-जल्दी खड़ा होता है और बैठता है, अपने पेट पर लात मारता है और अनेक समय दुख कम करने के लिए जमीन पर लुढ़कता है। तत्पश्चात श्वास कष्ट, लार गिरना, मुख के बाहर जीभ निकालना, सिर को निकालना इत्यादि लक्षण दिखाई देते हैं। आरम्भिक अवस्था में रयूमन की गतिविधि अत्याधिक बढ़ जाती है लेकिन बाद में रयूमन के अत्याधिक फैलाव से गतिविधि कम हो जाती है। तत्पश्चात पशु धराशयी हो जाता है और अगर ठीक ध्यान न दिया जाए तो पशु की मृत्यु भी हो सकती है। पशु आहार में अधिक मात्रा में दाना या बरसीम के सम्मिलन में अफारा हो सकता है। सिर्फ बरसीम खिलाने से भी अफारा होने के आसार बढ़ जाते हैं। अत: उसमें गेहूँ या धान का भूसा (2-3 किग्रा./प्रति दर) जरूर मिलाना चाहिए।

निदान : अफारे की अवस्था का निदान पशु के खाने-पीने का इतिहार, भोजन के प्रकार और आरम्भिक अफार की स्थिति से दिखाई पड़े लक्षणों से किया जाता है। कुछ जटिल दीर्घकालिक मामलों में अफारे का सही कारण जानना काफी मुश्किल भी होता है।

उपचार : अफारे का उपचार उसकी गम्भीरता पर निर्भर करता है। चरम अवस्था में जिसमें श्वास रूकने का खतरा हो, रयूमन की पष्ठीय कोश को तुरन्त ट्रोकर केनुला से छेद कर देना चाहिए और उस जगह पर दबाव देने से गैस निकल जाएगी।

अफारे की मध्यक्रम अवस्था में, उदर नली की मदद से रयूमन से गैस निकाली जानी चाहिए या दोनों जबड़ों के बीच हरी टहनी रखने से भी गैस मुख के माध्यम से निष्कासित हो जाएगी।

आमतौर पर अफारे को रोकने के लिए, कोई हिस्टामिन विरोधी दवा दी जाती है। गैस के बहिर्गमन के पश्चात कोई साधारण विचेरक दिया जाना उचित होता है। अफारे से निजात के बाद नरवाईन टोनिक की आवश्यकता भी पड़ सकती है। रोग की उग्र अवस्था में रयूमन में विद्यमान सामग्री को बाहर निकालना जरूरी हो जाता है। अफारे से छुटकारे के बाद, पशु को अल्प मात्रा में मदुविरेचक आहार दिया जाना चाहिए जिसमें गेहूँ के चोकर की मात्रा अधिक होनी चाहिए। पशु को हरा चारा, ज्यादा प्रोटीनयुक्त दाना मिश्रण एवं महीन पीसा दाना नहीं खिलाना चाहिए। अफारे से निजात पाने के 7-10 दिन बाद ही सामान्य आहार देना उचित है।

(ख) नाइट्रेट विषाक्तता

नाइट्रेट नामक रसायन प्रकृति में सर्वव्याप्त है। जब पशु अधिक नाइट्रेट युक्त चारे खरपतवार या पानी को अन्तर्ग्रहण करते हैं तो नाइट्रेट विषाक्तता हो जाती है। नाइट्रेट विषाक्तता दो किस्म की होती है।

(1) तीव्र विषाक्तता जो कि अचानक अधिक नाइट्रेट युक्त आहार अथवा पानी के ग्रहण करने से होती है।

(2) दीर्घकालिक विषाक्तता जो कि लम्बी अवधि तक कम नाइट्रेट युक्त आहार अथवा पानी के ग्रहण करने से होती हैं। मुख्यत: रोमान्थी

पशुओं में तीव्र विषाक्तता की पशुधन की हानि का कारण होता है।

नाइट्रेट के स्त्रोत

सामान्यत: नाइट्रेट विषक्तता पशुओं द्वारा ऐसे भोज्य पदार्थों के सेवन करने से होती है जिनमें नाइट्रेट की मात्रा अधिक पाई जाती है। तुलनात्मक दृष्टि से जई, जौ, ज्वार, राई, मक्का, तिलहन एवं कुछ खरपतवारों जैसे पिगवीड़, नाइटशेड तथा जोन्सन घास आदि में नाइट्रेट को एकत्र करने की क्षमता दूसरी फसलों की अपेक्षा अधिक होती है। पौधों में नाइट्रेट की मात्रा निम्नलिखित कारणों से बढ़ जाती है :-

अच्छी वर्षा का होना, मृदा की पी.एच. का कम होना, मृदा में गोलिबडिनम, सल्फर व फास्फोरस का कम होना, मृदा का तापमान का कम होना (लगभग 13 डिग्री सेंटीग्रेड), मृदा वायु, सूखा, अपर्याप्त सूर्य की रोशनी , फिनाक्सी एसिटिक एसिड युक्त शाकनाशी का उपयोग, नाइट्रेट युक्त उर्वरकों का अधिक उपयोग, ठण्डा मौसम व आसमान का बादलों से घिरा होना।

जब अधिक नाइट्रेट मात्रा युक्त पदार्थ या जल जैविक किण्वन से गुजरते हैं तो फलस्वरूप बना हुआ नाइट्रेट भी पशुओं द्वारा ग्रहण करने पर भी विषैलेपन का कारण बन सकता है। उच्च नाइट्रेट एवं नाइट्रोजन टेटराऑक्साईड ऐसी मात्रा में जमा हो सकती है जिससे पशु की मृत्यु तक भी हो जाती है।

अत: पशुओं को अधिक नाइट्रेट युक्त चारा या पानी नहीं देना चाहिए। तीव्र विषाक्तता की स्थिति में निकटतम पशु चिकित्सक से सम्पर्क स्थापित करके शीघ्रातिशीघ्र इलाज करवाना चाहिए ताकि सम्भावित पशुधन हानि को रोका जा सके।

संकर हाथी घास

बी.एस. मीणा

यह एक बहुवर्षीय घास है। एक बार बुआई करने से 3-4 वर्ष तक हरा चारा प्रदान करती रहती है। चारे की कमी के दिनों में भी संकर हाथी घास (नेपियर घास) से चारा प्राप्त होता रहता है जिससे पशुओं को वर्ष भर हरा चारा मिलता रहता है। वृद्धि की प्रारंभिक अवस्था में चारे में लगभग 12-14 प्रतिशत शुष्क पदार्थ पाया जाता है। इसमें औसतन 7-12 प्रतिशत प्रोटीन, 34 प्रतिशत रेशा तथा कैल्शियम व फास्फोरस की राख 10.5 प्रतिशत होती है। यह मात्रा कटाई की अवस्था तथा सिंचाई के ऊपर निर्भर करती है। इसकी पाचनशीलता 48-71 प्रतिशत होती है। इसमें सूखा व कीट-पतंगों के सहन करने की क्षमता होती है। नेपियर घास को बरसीम अथवा रिजका अथवा लोबिया के साथ मिलाकर खिलाने पर उच्च कोटि का स्वादिष्ट चारा पशु को मिलता है।

नेपियर घास का जन्म स्थान उष्ण कटिबन्धीय अफ्रीका है। यह घास गर्म एवं आर्द्रता वाले क्षेत्रों में लगाई जाती है। भारत वर्ष में लगभग सभी प्रान्तों में इसकी पैदावार ली जाती हैं लेकिन अधिक वर्षा एवं अधिक सर्दी वाले राज्यों में इसकी खेती नहीं करते।

जलवायु : संकर हाथी घास के लिये गर्म एवं तर जलवायु की आवश्यकता है अत: मानसून मौसम में यह फसल अधिक चारा प्रदान करती है। चमकदार धूप एवं बीच-बीच में वर्षा वाली जलवायु चारा उत्पादन के लिये सर्वोत्तम है। अच्छी पैदावार के लिये 25-30 डिग्री सेंटीग्रेड तापक्रम तथा औसतन 800-1000 मि.मी. वर्षा क्षेत्र अच्छे रहते हैं।

भूमि एवं भूमि की तैयारी : उचित जल निकास वाली सभी प्रकार से भूमियों पर नेपियर घास का उत्पादन किया जा सकता है लेकिन लोम एवं क्ले लोम भूमि सर्वोत्तम रहती है। एक गहरी जुताई करने के बाद दो जुताई कल्टीवेटर या देशी हल से करें साथ ही पाटा लगाकर खेत समतल कर लें।

बोने का समय : बोने का उपयुक्त समय सिंचित क्षेत्रों के लिए मार्च हैं। वर्षा आधारित क्षेत्रों में नेपियर की जड़ों को जुलाई के महीने में या मानसून की प्रारम्भिक अवस्था में लगायें। दक्षिण भारत में सिंचित क्षेत्रों में वर्ष के किसी भी माह में बुवाई कर सकते हैं।

बीज की मात्रा बोने की विधि : इसकी बुवाई जड़ों के कल्ले या तने के टुकडो द्वारा करते हैं। जडों की बुवाई करते समय पौधे से पौधे की दूरी 50 से.मी., तथा लाइन से लाइन की दूरी 1 मी. तथा गहराई लगभग 20-25 से.मी. रखनी चाहिये। लगभग 20,000-25,000 जड़ें एक हैक्टेयर क्षेत्रफल के लिए पर्याप्त होती है।

खाद व उर्वरक : संकर हाथी घास से अधिक उत्पादन लेने के लिये खेत में 220 से 225 कुन्टल गोबर की सड़ी खाद, नाईट्रोजन 100 किग्रा, फास्फोरस 40 किग्रा तथा पोटाश 40 किग्रा प्रति हैक्टेयर अवश्य डालनी चाहिए। गोबर की खाद को बुवाई के 10-15 दिन पहले अच्छी प्रकार भूमि में मिलायें तथा बुवाई के समय फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा खेत में मिला दें। नाइट्रोजन की आधी मात्रा बुवाई के 15 दिन बाद छिड़क दें तथा शेष मात्रा सर्दी के अन्त में (मार्च) छिड़क दें। यदि सम्भव हो तो नाईट्रोजन की पूरी मात्रा को 3-4 बराबर भागों में बॉट लें और प्रत्येक कटाई के बाद खेत में छिड़कें जिससे नेपियर की बढ़वार शीघ्र होती है।

सिंचाई : पहली सिंचाई जड़ें लगाने के तुरन्त बाद करें । बाद में 2 सिंचाई 7-8 दिन के अन्तर पर अवश्य करें। इस समय तक जडें अच्छी प्रकार जम जाती है एंव बढ़वार होने लगती है। बाद में सिंचाई 15-20 दिन के अन्तर पर मौसम का ध्यान रखते हुए करते रहें।

इन्टरक्रोपिंग : सर्दी के मौसम में नेपियर घास की बढ़वार कम होती है। अत: नेपियर की लाइनों के बीच में बरसीम या जई या रिजका की फसल ली जा सकती है। आई.जी.एफ.आर.आई., (घासानुसंधान) में किये गये शोध के आधार पर बरसीम की फसल नेपियर की लाइनों में अच्छा परिणाम देती है तथा नेपियर की इगफ्री-3 किस्म अन्त:फसल के लिए सर्वोत्तम पाई गई है। नेपियर की लाइन से लाइन की दूरी सुविधानुसार 3 - 10 मीटर तक बढ़ाकर लाइनों के बीच में मौसमी फसलें जैसे ज्वार, मक्का, लोबिया, ग्वार, बरसीम,

रिंजका, जई आदि सफलतापूर्वक लगाई जा सकती हैं जिससे वर्ष भर हरा चारा मिलता रहता हैं।

कटाई : प्रथम कटाई बुवाई के 50-60 दिन बाद करें। बाद की कटाईयां गर्मी में 40 दिन के अन्तर पर तथा वर्षा में 30 दिन के अन्तर पर करें। नवम्बर से जनवरी के माह में बढ़वार धीरे होती है। अत: कटाई का अन्तर बढा दें। पौधों की उंचाई 1-1.5 मीटर होने पर कटाई कर लेनी चाहिए। कटाई करते समय ध्यान रखें कि कटाई जमीन से 12-15 से.मी उपर से करें जिससे नई कोपलें नष्ट होने से बच सकें।

उपज : उचित प्रबन्ध करने पर संकर हाथी घास से उत्तरी क्षेत्रों में लगभग 1500 कुन्टल एवं दक्षिणी क्षेत्रों में 2000 कुन्टल हरा चारा प्रति हैक्टयर एक वर्ष में प्राप्त किया जा सकता है।

किस्में : इगफी-3,6,7,10, जसवन्त, (0-3)
इसके अलावा पूसा ज्वाइंट, पूसा नेपियर 1 एवं 2, एन.बी. 5 एवं 21 आदि।

गिन्नी घास

बी.एस. मीणा

स्थान गिन्नी घास का उद्भव उष्ण एवं उपोष्ण अफ्रीका है वर्तमान समय में संसार के सभी उष्ण एवं उपोष्ण भागों में गिन्नी घास पैदा की जाती है। भारत में इसकी पैदावार दक्षिणी राज्यों जैसे कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, महाराष्ट्र, गुजरात आदि में ली जाती है।

यह एक अधिक चारा उत्पादन करने वाली बहुवर्षीय घास है। इसे सभी प्रकार की जलवायु में उगाया जा सकता है। यह छायादार स्थान पर भी अधिक उपज देती है। इसी कारण फलदार वृक्षों के बगीचों में इसे आसानी से उगा सकते हैं। इसमें सूखा सहन करने की क्षमता होती है। गिन्नी घास का साईलेज अच्छा बनता है यह ज्वार व मक्का से अच्छा हरा चारा है। इसमें 5-14 प्रतिशत क्रूड़ प्रोटीन और 52-60 प्रतिशत कुल पाच्य तत्व होते हैं। पोषक तत्वों की मात्रा कटाई की अवस्था पर निर्भर करती है।

जलवायु : गर्म एवं आर्द्रता युक्त वातावरण में गिन्नी घास अच्छी पैदावार देती है। बादलयुक्त मौसम में हल्की बरसात होने पर गिन्नी घास की वृद्धि तेजी से होती है। इस घास के उत्पादन के लिये न्यूनतम तापमान 15 डिग्री सेंटीग्रेड तथा अधिकतम तापमान 38 डिग्री सेंटीग्रेड सर्वोत्तम रहता है। चरागाह पर इस घास को लगाने के लिये वार्षिक वर्षा 600-1000 मिली होनी चाहिए।

भूमि एवं भूमि की तैयारी : उचित जल निकास वाली सभी प्रकार की भूमियों पर गिन्नी घास का उत्पादन किया जा सकता है लेकिन लोम एवं क्ले लोम भूमि सर्वोत्तम रहती है। एक गहरी जुताई करने के बाद दो जुताई कल्टीवेटर या देशी हल से करें साथ ही पाटा लगाकर खेत समतल कर लें।

बीज की मात्रा : गिन्नी घास बीज व जड़ों दोनों द्वारा आसानी से लगाई जा सकती है। 3-4 किलो बीज प्रति हेक्टेयर या लगभग

क्षेत्र	किस्में
केरल	मकूनी
मध्य एवं दक्षिण भारत	हामिल
उत्तर पश्चिम भारत	पी.जी.जी. 1, गटन
पंजाब	पी.जी.जी. 19, पी.जी.जी. 101
उत्तर, उत्तर पश्चिम एवं मध्य भारत	पी.जी.जी.3, पी.जी.जी.9, हामिल, गटन

20,000-25,000 जड़ें एक हैक्टयर क्षेत्रफल के लिये पर्याप्त होती है। पौधे से पौधे की दूरी 50 से.मी. तथा लाइन से लाइन की दूरी भी 100 से. मी. रखते हैं। यदि अन्त: फसल लेनी हो तो लाइन से लाइन की दूरी 3 से 10 मीटर तक रखते हैं।

खाद व उर्वरक : गिन्नी घास के खेत में 220 से 225 क्विंटल गोबर की सड़ी खाद, नाईट्रोजन 100 किग्रा, फास्फोरस 40 किग्रा तथा पोटाश 40 किलो प्रति हैक्टेयर डालने पर अच्छी पैदावार होती है। गोबर की खाद को बुआई के 10-15 दिन पहले अच्छी प्रकार भूमि में मिलायें और बुआई के समय फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा खेत में मिला दें। नाईट्रोजन की आधी मात्रा बुआई के 15 दिन बाद छिड़क दें तथा शेष मात्रा सर्दी के अन्त में (मार्च) छिड़क देना चाहिए। यदि सम्भव हो तो नाईट्रोजन की पूरी मात्रा को 3-4 बराबर भागों में बांट लें और प्रत्येक कटाई के बाद खेत में समान रूप से छिड़कते रहें जिससे कि गिन्नी घास का हरा चारा शीघ्र एवं लगातार मिलता रहे।

सिंचाई : पहली सिंचाई जडें लगाने के तुरन्त पश्चात करें और 2 सिंचाई 7-8 दिन के अन्तर पर अवश्य करें। इस समय तक जड़ें अच्छी प्रकार जम जाती हैं एवं बढ़वार होने लगती है। बाद में सिंचाई 15-20 दिन के अन्तर पर मौसम का ध्यान रखते हुए करनी चाहिए।

इन्टरक्रोपिंग

सर्दी के मौसम में गिन्नी घास की बढ़वार कम होती है। अत: गिन्नी की लाइनों के बीच में बरसीम या जई या रिजका की फसल ली जा सकती है। संस्थान में किये गये शोध के आधार पर बरसीम की फसल गिन्नी की लाइनों में अच्छा परिणाम देती है तथा गिन्नी की हामिल किस्म अन्त:फसल

के लिये सर्वोत्तम पाई गई है। गिन्नी की लाइन से लाइन की दूरी सुविधानुसार 3-10 मीटर तक बढाकर लाइनों के बीच में मौसमी फसलें जैसे ज्वार, मक्का, लोबिया, ग्वार, बरसीम, रिंजका, जई आदि सफलतापूर्वक लगाई जा सकती हैं जिससे वर्ष भर हरा चारा मिलता रहता है।

उपज : उचित प्रबन्धन द्वारा वर्षा आधारित क्षेत्रो में 5-6 कटाईयों मे 500-600 कुन्टल तथा सिंचित क्षेत्रों में 10-12 सिचाई करके 1000-1500 कुन्तल हरा चारा प्रति हेक्टेयर प्राप्त किया जा सकता है। दक्षिणी भारत में गिन्नी घास से एक वर्ष में 2000 कुन्टल हरा चारा प्रति हैक्टेयर प्राप्त किया जा सकता है।

रा.डे.अनु.सं., करनाल का किसान हैल्प लाईन न. 1800 – 180 – 1199 (टोल फ्री)

सम्पादक मण्डल

1.	डा. केहर सिंह कादियान	अध्यक्ष	डेरी विस्तार प्रभाग	6.	डा. बी. एस. मीणा	सदस्य	डेरी विस्तार प्रभाग
2.	डा. अर्चना वर्मा	सदस्य	पशु प्रजनन एवं अनुवंशिकी प्र. प्रभाग	7.	डा. राकेश कुमार	सदस्य	चारा अनु.प्र.केन्द्र
3.	डा. मंजू आशुतोष	सदस्य	पशु शरीर क्रिया विज्ञान	8.	डा. ओमवीर सिंह	सदस्य	पशु प्रजनन एवं अनुवंशिकी प्रभाग
4.	डा. चन्द्र दत्त	सदस्य	पशु पोषण प्रभाग	9.	डा. हँस राम मीणा	सम्पादक	डेरी विस्तार प्रभाग
5.	डा. सुजीत कुमार झा	सदस्य	डेरी विस्तार प्रभाग				

वेबसाइट : www.ndri.res.in

बुक – पोस्ट
त्रैमासिक मुद्रित सामग्री

भारतीय समाचार पत्र रजिस्टर के अधीन पंजीकृत संख्या 19637/7

सेवा में,

प्रेषक .....

डेरी विस्तार प्रभाग, ...

राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, ...

करनाल - 132 001 (हरियाणा), भारत

प्रकाशक : डा. अनिल कुमार श्रीवास्तव, निदेशक, रा.डे.अनु.सं., करनाल
रुपरेखा : डा. केहर सिंह कादियान, अध्यक्ष, डेरी विस्तार प्रभाग
सम्पादक : डा. हँस राम मीणा, वरिष्ठ वैज्ञानिक, डेरी विस्तार प्रभाग
प्रूफ रीडिंग : श्रीमती कंचन चौधरी, सहा. मुख्य तकनीकी अधिकारी, राजभाषा एकक

प्रकाशन तिथि : 31.12.2016

मुद्रित प्रति – 3000

AARONMedia 098964 33225